P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-4* ISSUE-2* May (Part-1)- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

पंचायती राज व्यवस्था एवं दलित महिलाओं की भूमिका

योगेन्द्र सिंह
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
वीणा मेमोरियल पी.जी. कॉलेज,
करौली, राजस्थान, भारत

सारांश

सन् 1951 में देश की आबादी लगभग 83 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है। और अब भी 72.2 प्रतिशत लोग गांवों में रहते हैं। आशय यह है कि देश के विकास के लिए गांवों का सर्वांगीण विकास अति आवश्यक था ओर आज भी है। ग्राम विकास राष्ट्र का पर्याय बन गया है। ग्रामीण विकास के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम समाज में ऐसे वर्ग की पहचान करें जो सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से पिछडे हो या सुविधाओं से वंचित हो तथा जिनके विकास के लिए आवश्यक कदम उठाये जाने जरूरी हो दलित महिलाओं की स्थिति अति दयनीय हो जाती है। इसका प्रमुख कारण समाज का पुरूष प्रधान एवं जाति प्रधान होना, महिलाओं की कमजोर आर्थिक, शैक्षणिक आदि स्थितियाँ हैं।

मुख्य शब्द : पंचायती राज, दलित, सशक्तिकरण, लोकतंत्र, सरपंच, संविधान, राजतंत्र आदि।

प्रस्तावना

जब हम अपने समाज को देखते हैं तो पाते हैं कि हमारे समाज का एक बहुत बडा वर्ग जो महिलाओं का है निश्चित रूप से सामाजिक, मूल्यों, प्रभावी कानून एवं प्रवर्तन प्रथाओं के अभाव में राजस्थान की महिलाओं को एक गंभीर संक्रमणकाल से गुजरना पड़ रहा है। वास्तव में यह चुनौतीपूर्ण समय है । दयनीय स्तर एवं विषय जीवन परिस्थितियों के रहते हुए भी राजस्थान की महिलाऐं अपने साहस, ताकत एवं दृढ़ निश्चय के लिए विख्यात है। ऐसे कठोर वातावरण में जीना । जहाँ पानी एवं ईंधन की व्यवस्था हेतु कई घण्टे कठोर परिश्रम करना पडे, अपने आप में एक प्रमुख उपलब्धि है। दलित महिलाओं की स्थिति अति दयनीय हो जाती है। इसका प्रमुख कारण समाज का पुरुष प्रधान एवं जाति प्रधान होना, महिलाओं की कमजोर आर्थिक, शैक्षणिक आदि परिस्थितियाँ है। ग्रामीण समाज में व्याप्त गरीबी के कारण यह स्थिति और खराब हुई। यद्यपि आजादी के बाद से ग्राम विकास के लिए चलाए गए कार्यक्रमों में महिलाओं को विशेष स्थान दिया गया किन्तु पुरूष शासित, रूढिवादी ग्रामीण समाज में कोई विशेष प्रगति देखने को नहीं मिली। यद्यपि अब पंचायतों के संवैधानिक अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। पंचायतें, अब भारतीय राजनीतिक संरचना की जिला स्तर पर उसी प्रकार की संवैधानिक इकाइयाँ है जिस तरह देश में राज्यों की संघटक इकाईयां होती है, जिन्हें साधारण परिस्थितियों में भंग नहीं किया जा सकता। इस नई व्यवस्था ने सबसे क्रान्तिकारी कदम उठाकर समाज के सभी वर्गों के लोगों को, स्त्रियों एवं पुरूषों को, स्थानीय व्यवस्था में सहभागिता का समान अवसर प्रदान किया है। अपनी अशिक्षा, आर्थिक दुर्बलता अथवा परम्परागत सामाजिक मान्यताओं के कारण ये पिछडी–दलित जातियों अथवा इस वर्ग की महिलाऐं इस सहभागिता से कहीं वंचित न रह जाऐं, इन दलित महिलाओं को पंचायतों में भागीदारी एवं नेतृत्व प्रदान करने का अवसर प्राप्त हुआ जो अपने आप में राजनैतिक एवं सामाजिक क्रान्ति की दस्तक थी।

शोध का उद्देश्य

इस शौध का मुख्य उद्देश्य यह जानना है कि हमारे देश में पंचायती राज व्यवस्था जब से लागू हुई है। उसमें दलित महिलाओं की स्थिति क्या है। सत्ता में आने के बाद भी दलित प्रतिनिधि नेतृत्व क्षमता का प्रभावी उपयोग करने से किस प्रकार वंचित किये जाते हैं।

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा

पुरुष एवं नारी दोनों आधारभूत सजीव अवधारणाएँ हैं जो अपनी अन्तःक्रिया से मानव समाज के सृजन, संगठन, संवर्द्धन और विकास के लिए महिला और पुरुष दोनों सामाजिक रथ के दो पहिये के समान हैं। परन्तु परिवार, समाज और राज्य की कार्य प्रणाली शुरू से ही पितृसत्तात्मक रही है जिसका प्रत्यक्ष तथा स्वाभाविक परिणाम आगे चलकर पुरुषों एवं महिलाओं की प्रस्थिति

(हैसियत) ये अन्तराल के रूप में सामने आया। मानव समाज के ऐतिहासिक विकास के प्रत्येक चरण में, पितृसत्तामक सोच के कारण ही बहुत कम ऐसे अवसर दिखाई पडते हैं जब राजनीति शक्ति महिलाओं में निहित रही है। सत्ता शीर्ष पर महिलाओं की उपस्थिति ने भी सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति को कभी दीर्घकालिक नहीं होने दिया। इसका प्रतिफल समाज में पुरूष और नारी के स्थायी निर्भरतामूलक सम्बन्धों के रूप में दिखाई देता हैं। धीरे–धीरे सहमति मूलक प्रकृति परिवर्तित आश्रितामूलक बन गई। परिणाम स्वरूप, नारी अपने जीवन के प्रत्येक क्षण के लिए पुरूष पर आश्रित हो गई। इस प्रकार की स्थितियों का सृजन दीर्घकालिक प्रक्रिया का परिणाम है। मध्ययुगीन समाज में नारी की दयनीय स्थिति और आधुनिक युग में इसे सशक्त बनाने का प्रयास यह घोषित करता है कि समाज में नारी की स्थिति पुरुषों के समकक्ष नहीं है।

भारत सहित सम्पूर्ण विश्व में महिलाएँ किसी न किसी रूप में अत्याचार, असमानता एवं शोषण की शिकार रही है। आज समाज में प्रत्येक स्तर पर सशक्तिकरण हेतु महिलाएँ कहीं न कहीं संघर्षरत है। महिला सशक्तिकरण का सीधा सम्बन्ध महिलाओं की अपने संवैधानिक एवं वैधानिक अंधिकारों के प्रति चेतना के स्तर से जुडा हुआ है। विगत वर्षों में यह चेतना देखी जा सकती है। महिलाओं ने अपने अधिकारों को कर्त्तव्यबोध के साथ स्वीकार कर सामाजिक परिवेश में निर्णय लेने एवं रीति के क्रियान्वयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है जिससे उनमें वास्तविक शक्ति का संचार हुआ है। उन्होंने स्वयं को स्वविकास पर केन्द्रित करना आरम्भ किया है जो उन्हें वास्तविक सशक्तिकरण की तरफ ले जा रहा है।

आधुनिक भारतीय समाज में, जहाँ लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था समाज में सम्पूर्ण क्रियाकलापों को संचालित कर रही है, महिलाओं का आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से सशक्त होना उनके आधारभूत विकास के लिए आवश्यक है।

भारतीय समाज में पुरूष और महिला श्रम–शक्ति की उत्पादकता पुरुष से कम नहीं है। परन्तु श्रम क्षेत्र के संगठनात्मक स्वरूप पर यदि ध्यान दिया जाये तो सरकारी श्रम शक्ति में उनकी सहभागिता 33.3 प्रतिशत है । दूसरी ओर, कुल कार्य घण्टों में उनकी कार्य सहभागिता 66.6 प्रतिशत है। परन्तु वे विश्व की कुल मात्र 10 प्रतिशत ही प्राप्त कर रही हैं और विश्व की कुल सम्पत्ति में उनका स्वामित्व अंश मात्र 1 प्रतिशत है। इतना ही नहीं महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह की स्पष्ट झलक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रतिवदनों में भी दिखाई देती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिवेदन, 1955 में स्पष्टतया उल्लिखित है कि राजनीतिक स्वभावतः केवल पुरुषों के अनुरूप है, जिसमें महिलाएँ केवल अपवादित परिस्थितियों में और निर्धारित कठोर सीमा के भीतर ही शामिल की जानी चाहिए। यह स्थिति महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रति पुरुष प्रधान समाज के प्रयासों, उसमें निहित गम्भीरता और सकारात्मक मनोवृत्ति की स्थिति को स्पष्ट करती है। आधुनिक पुरुष प्रधान समाज में कुछ क्षेत्रों में महिलाओं ने अपनी सशक्त उपस्थिति प्रदर्शित करते हुए निर्णय निर्माण के कुछ महत्वपूर्ण पदों पर प्रतिस्पर्धात्मक सफलता के माध्यम से आधिपत्य स्थापित करके यह प्रदर्शित किया है कि वे शिक्षा, चिन्तन और संगठन शक्ति में पुरुषों में कमजोर नहीं हैं लेकिन, इन क्षेत्रों की अत्यन्त सीमित संख्या, उसमें महिलाओं की सीमित उपस्थिति और उनके प्रति उस क्षेत्र में कार्यरत लोगों की मानसिकता के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज के दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता है। महिलाओं को भी एक व्यक्ति और समान सहभागी के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

भारत में महिला सशक्तिकरण का परिदृष्य

महिला सशक्तिकरण का कार्य योजना ने 1917 में भारतीय महिला संगठन कॉन्फ्रेन्स की स्थापना के साथ ही एक निश्चित स्वरूप लेना शुरू कर दिया था। इसके पूर्व भी महिलाओं ने बंगाल विभाजन एवं होमरूल आन्दोलन में बढ़ चढकर हिस्सा लिया था। 20वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध से ही भारतीय राजनीति के क्षेत्र में आन्दोलन में सम्मिलित करके उनकी क्षमता को सशक्त करने का प्रयास किया गया । गांधी के नेतृत्व में तथा उनके सफल निर्देशन में भारतीय महिलाओं ने 1930 के दशक में सक्रिय रूप से राजनीतिक सहभागिता के क्षेत्र में दस्तक दे दी थी। भारतीय कांग्रेस के सन् 1931 में करांची में हुए वार्षिक सम्मेलन में यह औपचारिक प्रस्ताव पारित किया गया था कि भारतीय महिलाओं को राजनीतिक समानता प्राप्त होगी।

भारतीय परिवार में महिलाओं को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त पुरुष पर निर्भर रहना पडता है। बचपन में पिता या भाई, विवाह होने के बाद पति तथा वृद्धावस्था में यदि जीवित न रहे तो पुत्र उसका सहारा बनते हैं वह तो अपने या अपने बच्चों के लिए स्वयं कोई निणर्य भी नहीं ले सकती।

शिक्षा

लडकी को पराया धन माना जाता है। उसे तो दूसरे घर जाकर गृहस्थी का भार उठाना है। अतः 5–6 साल की होते–2 उसे अपने से छोटे बच्चों की देखभाल, घर की झाडू–बुहारी का जिम्मा सौंप दिया जाता है। आम धारणा यही होती है कि वह पढ लिखकर क्या करेगी? लेकिन दलित पुरुष के लिए भी शिक्षा दूभररही है तो दलित महिला की शिक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

सामाजिक स्थिति

परिवार से ही समाज बनता है। लेकिन दलित महिला को घर में भी कोई अधिकार नहीं, कोई आदर नहीं और समाज में तो उसे हीन समझा ही जाता है। इस अनादर की भावना के कारण ही वह पराए पुरुषों द्वारा भी प्रताडित होती रहती है। शहरों में भ्रूण हत्या कर दी जाती है तो गांवों में जनम लेते ही गला दबा दिया जाता है। दलित महिला की स्थिति दोहरे शोषण से बदतर हो जाती है।

गांव में व्याप्त अन्धविश्वासों का शिकार भी महिला को ही बनना पडता है यदि वह सम्मान का जीवन जीना चाहती है। गांव के मुखिया का सामना करती है, उसके चंगुल में नहीं फंसती है तो षडयंत्रों के तहत उसे

भूतनी, चुडैल, डायन आदि घोषित कर दिया जाता है। स्यानो–भौपे भूतनी उतारने के बहाने उसे दण्डित करने लगते हैं।

आर्थिक स्थिति

गाँवों की दलित महिलाएं घर–परिवार की जिम्मेदारी तो उठाती ही है। साथ ही खेत–खलिहानों में काम भी करती है। मजदूरी करती है। फिर भी आर्थिक दृष्टि से उनका कोई योगदान नहीं माना जाता उनके घर के सारे दिन के कार्य का तो कोई मोल ही नहीं माना जाता। बाहर मजदूरी करके जो कमाती है। उस पैसे पर भी उनका अधिकार नहीं रहता । यही नहीं मजदूरी भी उसे पुरुष के बराबर नहीं मिलती।

राजनीतिक स्थिति

भारतीय संविधान के अनुसार स्त्री–पुरुष के समान अधिकार है। आगे बढने के समान अवसर है। लिंग के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। फिर भी प्रचलित व्यवस्था में स्त्री को अकुशल माना जाता है। वोट भी वह घर के आदमी की इच्छा के अनुसार ही देती है। संवैधानिक प्रावधान में आरक्षण के कारण यदि वह चुनाव भी लड लें और जीत भी ले तो काम उनका पति ही करता है। वह तो नाममात्र के पद पर होती है। पंचायती राज अधिनियम के तहत राजनीतिक दलों और पुरुष समाज की विवशता है कि महिलाओं के लिए आरक्षित पदों पर महिला प्रत्याशी हो। ऐसे में महिला चुनाव लडती तो है पर अधिकतर घूधट में रहकर और दलित महिला को ग्रामीण समाज अछूत, हीन, घृणित भावना है तो कैसे उसे पंचायतों की बैठकों में स्वीकार कर सकता है।

जाति का दलित महिलाओं की भूमिका पर प्रभाव

जाति भारत की एक सामाजिक घटना है, जिसे परिभाषित करना असाधारण रूप से कठिन है। क्योंकि इसकी प्रकृति में भिन्नता पायी जाती है। गांवों में जाति व्यवस्था की जडे गहरी है एवं जीवन इससे व्यापक रूप से प्रभावित है। क्योंकि जाति की जडे धार्मिक व्यवस्था में है एवं इसे आनुवांशिक पदानुक्रम के रूप में भी समझा जाता है। जाति व्यवस्था निम्न जातियों एवं स्त्रियों को प्राथमिक शिक्षा से भी वंचित करती है । यह प्राचीन परम्परा युगों से चलती आ रही है एवं इसका ग्रामीण लोगों के जीवन पर आज भी बहुत असर है। निम्न जाति के लोगों को उच्च जातियों की रिहायश से अलग रहने के लिए मजबूर किया जाता है। अधिकांशतः गांवों में उन्हें मताधिकार से वंचित रखा जाता है एवं उसे बिना किसी परिश्रमिक के काम करना पडता है, उसके साथ बंधुआ की तरह व्यवहार होता है। इस प्रकार एक तरफ युगों पुरानी जाति व्यवस्था है। जिसकी आज भी अपमानजनक रूप में अनुपालन होता है एवं दूसरी ओर भारतीय संविधान है जो लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के अनुसार कानून के समक्ष समानता प्रदान करता है। मानवाधिकार कार्यकर्ता एवं विद्वान, योगेन्द्र यादव मानते हैं कि यथार्थ इन दोनों अतिवादों के बीच कहां स्थित है एवं वे इस बात की पुष्टि करते हैं कि समाज में मानवाधिकारों के उल्लंघन का सबसे बडा स्रोत जाति व्यवस्था है।

साहित्यावलोकन

व्यासुलु विनोद और पूर्णिमा, 'वीमेन इन पंचायती राज प्रारारूट डेमोक्रेसी इन इण्डिया, मालगुडी का अनुभव, मार्च 1999 पृष्ठ 23 में जब से संवैधानिक संशोधन द्वारा स्थानीय शासन व्यवस्था को मजबूती मिली है, स्थानीय समुदायों में जातिवाद की उग्र अभिव्यक्ति में तीव्र वृद्धि हुई है। जब अन्य जातियों ने पंचायती राज संस्थाओं को उस औजार के रूप में देखा जिसके माध्यम से लोकतांत्रिक राज्यतंत्र में रह रहे निम्न जातियों द्वारा व्यक्ति के रूप में अपने अधिकारों का दावा किया जाता है तो ये लोग जातिगत भेदभाव एवं हिंसा का निशाना बनने लगे। स्थानीय स्तर पर यह बढती हुइ अशांति सामान्य घटना हो गयी है।

1. पंचायती राज अपडेट, 'इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्स', नई दिल्ली, जून और अगस्त 1998 में राजस्थान में एक जनजाति की स्त्री सरंपच को 15 अगस्त 1998 (स्वतंत्रता दिवस) को राष्ट्रध्वज फहराने के कारण निर्वस्त्र कर दिया गया। एक अन्य मामले में मध्य–प्रदेश की एक जनजाति की स्त्री सरपंच को एक उच्च जाति के नेता से सलाह लेने के जुर्म में ग्रामसभा की बैठक में नंगा कर दिया।
2. महिला पंच–सरपंच सम्मेलन उदयपुर, 24 व 25 जनवरी 2001 में भाग लेने वाली महिला प्रतिनिधियों ने अपने अनुभवों व काम में आ रही समस्याओं की चर्चा की। नदरराणा पंचायत की वार्ड पंच मांगीनाई ने बताया कि– ''रजिस्टर में हमसे अंगूठा तो लगवा लेते हैं परन्तु हमारी बात नहीं सुनते हैं। सरपंच, सचिव व अन्य पुरुष प्रतिनधि आपस में ही घालमेल करके निर्णय कर लेते हैं। काम नहीं होने पर वार्ड के लोग शराब पीकर अपशब्द कहते हैं।''
3. मेघवंशी भरत, दलित महिला के हिस्से सिर्फ अपमान और प्रताडना, पंचायती राज अपडेट, नवम्बर 2007, वर्ष 12, अंक 11 में भवंर मेघवंशी ने जोधपुर जिले की शेरगढ पंचायत समिति की प्रधान धनवती मेघवाल के शोषण और प्रताडना का मामला उठाते हुए कहा कि यह 73वें संविधान संशोधन में संजोए गए पंचायती राज के जरिए स्वशासन के सपने का खून है। इस दलित महिला प्रधान को पंचायत समिति द्वारा आयोजित सेतरावा पशु मेले के शुभारंभ पर होने वाले ध्वजारोहण में पुलिस, मीडिया ओर आमजन की मौजूदगी में जबरन झण्डा फहराने से रोक दिया गया।
4. दैनिक भास्कर, जयपुर दिनांक 24 अक्टूबर 2004 में ग्राम पंचायत भानपुरा (गोगून्दा–उदयपुर) की महिला सरपंच, ऊर्मिली को दबंग लोग सहन नहीं करसके और उसे डायन बताकर पंच पटैलों ने 15000/– का जुर्माना किया एवं जीमण करवाया।
5. दैनिक भाष्कर जयपुर दिनांक 16 जनवरी 2005 में ग्राम पंचायत महूं कला (गंगापुर सिटी) की दलित महिला सरपंच को उच्च जाति के लोगों ने षडयंत्र रचकर उसके कार्यकाल के दौरान 5 बार निलम्बित करवाने का प्रयास करवाया।

6. पंचायत राज अपडेट, इन्सटीटयूट ऑफ सोशल साइन्स'' नई दिल्ली अक्टूबर 2005 पृष्ठ संख्या 6 में ग्राम पंचायत मकनपुर (करौली) की महिला सरपंच के विरूद्ध षडयंत्र रचकर एवं निरक्षरता का फायदा उठाते हुए अविश्वास प्रस्ताव द्वारा अपदस्थ करा दिया। ग्राम पंचायत रझाना (राजस्थान) की दलित महिला सरपंच के साथ एक कर्मचारी और भाजपा कार्यकर्ता द्वारा बलात्कार किया गया।
7. आकोदिया आर.के. 'ग्राम स्वराज्य लोकतंत्र की बुनियाद' दीक्षा दर्पण (हिन्दी पाक्षिक) जयपुर 01 से 15 जनवरी 2010 पृष्ठ 84 में भरतपुर जिले के सेवर क्षेत्र के पास स्थित ग्राम पंचायत अनुसूचित जाति की महिला सरपंच के लिए आरक्षित थी। उस पंचायत क्षेत्र में जाटव अधिक संख्या में थे गांव की प्रभावशाली जाति के लोगों ने केवल इस आधार पर ही एक वाल्मीकी समाज की महिला को सरपंच बनवा दिया क्योंकि बाल्मिकी का केवल एक ही घर था। वह महिला गांव में झाडू लगाती थी। सरपंच बना दिया जाने पर यह शर्त रखी गई कि वह वाल्मिकी जाति की महिला सरपंच कभी भी पंचायत में बतौर सरपंच नहीं बैठेगी। जो भी पंच व उपसरपंच मिलकर प्रस्ताव व नीतिगत निर्णय लेंगे। उक्त प्रस्ताव पर पंचायत का चपरासी रजिस्टर लेकर घर जायेगा तो वह हस्ताक्षर कर देगी। तीन साल बाद एक बार उसने चपरासी से पूछ लिया कि इनमें क्या लिखा है। पढकर सुनाओं तब हस्ताक्षर करूंगी तो चपरासी ने महिला सरपंच को गालियाँ निकाली तथा पंचायत में जाकर शिकायत की जिस पर पंचायत सचिव, वार्ड पंच व चपरासी उसके मकान के पास आये तथा सरेआम लात–घूंसों से मारा जब वह थाने में रिपोर्ट करने गई, पुलिस अधीक्षक व कलक्टर भरतपुर को शिकायत की लेकिन पुलिस ने किसी स्वतंत्र साक्षी द्वारा घटना की ताईद नहीं करने मात्र पर एफ.आर. लगा दी। महिला सरपंच के साथ मारपीट करने वाले वार्ड पंचों, सचिव, चपरासी के विरूद्ध पुलिस ने कोई कार्यवाही नहीं की।
8. दैनिक भाष्कर 11 जून 2019 में बताया गया है औरतों के खिलाफ एक के बाद एक अपराधों के सिलसिले बढते जा रहे हैं।

निष्कर्ष

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दलित महिलाओं के निम्नस्तर को पुरुष प्रधान समाज, सामन्ती प्रथाएं एवं मूल्यों, जातीय आधार पर घटित सामाजिक ध्रुवीकरण, अशिक्षा एवं अत्यधिक दरिद्रता के पर्याय स्वरूप देखा जा सकता है। इस स्थिति के अनेक कारण है जो कि इस लिंगानुपात समाज में उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दशा एवं मानसिक स्थिति में सुधार करने तथा शोषण एवं शोषणवादी कुरीतियों को समाप्त करने के लिए प्रक्रियाओं, पद्धतियों व तंत्र को गतिशील बनाना व राज्य में दलित महिलाओं एवं बालिकाओं के समग्र विकास हेतु सहायक वातावरण तैयार करना आवश्यक है।

अतः दलित महिलाओं के प्रति सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन और राजनैतिक भागीदारी बढाने के साथ ही समाज की मानसिकता में परिवर्तन भी आवश्यक है। जिससे दलित महिलाओं के लिए नये अवसर और परिस्थितियां निर्मित होगी यह भारतीय लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करने के साथ–साथ सशक्तिकरण का भी मूलमंत्र सिद्ध होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

पंचायती राज अपडेट, 'इंसस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्स' नई दिल्ली, 1998.

दैनिक भाष्कर, जयपुर, 2004.

दैनिक भाष्कर, जयपुर 2005.

मेघवंशी, भरत, दलित महिलाओं के हिस्से सिर्फ अपमान और प्रताडना' पंचायती राज अपडेट नवम्बर 2007.

आकोदिया आर.के. 'ग्राम स्वंराज लोकतंत्र की बुनियाद, दीक्षा दर्पण (हिन्दी पाक्षिक) जयपुर 01 से 15 जनवरी 2010.

द हिन्दू दैनिक अंग्रेजी समाचार पत्र, 25 नवम्बर 2010.